श्री आचार्य नेमिचंद्र विरचित

श्री गोम्मटसार कर्मकाण्ड

अधिकार 2 - सत्त्व प्रकरण

Presentation Developed By: Smt. Sarika Vikas Chhabra

मंगलाचरण

पणमिय सिरसा णेमिं, गुणरयणविभूसणं महावीरं ।
सम्मत्तरयणणिलयं, पयडिसमुक्कित्तणं वोच्छं ॥ 1 ॥
णमिऊण णेमिचंदं, असहायपरक्कमं महावीरं ।
बंधुदयसत्तजुत्तं, ओघादेसे थवं वोच्छं ॥ 87 ॥

Designed by Pngtree

तित्थाहारा जुगवं, सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिए ।
तस्सत्तकम्मियाणं, तग्गुणठाणं ण संभवदि ॥333॥

- अर्थ— मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र – इन तीनों गुणस्थानों में क्रम से
  - पहले में तीर्थंकर और आहारक-द्वय एक काल में नहीं होते ।
  - दूसरे में तीनों ही प्रकृतियाँ किसी काल में नहीं होती और
  - मिश्र में तीर्थंकर प्रकृति नहीं होती ।
- क्योंकि इन सत्त्व प्रकृतियों वाले जीवों के वे मिथ्यात्वादि गुणस्थान ही संभव नहीं हैं ॥333॥

www.JainKosh.org

सत्व

जो कर्म प्रकृतियाँ आत्मा के साथ संश्लेषरूप संबंध से बंधी हुई हैं, वे सत्त्व प्रकृतियाँ होती हैं ।

www.jainkosha.org

तीर्थंकर और आहारक-2 की सत्ता संबंधी नियम

प्रकृति	मिथ्यात्व गुणस्थान	सासादन गुणस्थान	मिश्र गुणस्थान
आहारक-2	✓	×	✓
तीर्थंकर	✓	×	×
युगपत् दोनों	×	×	×

www.JainKosh.org

तीर्थंकर और आहारक-2 की सत्ता संबंधी नियम

जिसने नरकायु का बंध करके, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त करके, तीर्थंकर प्रकृति बांधी है, ऐसे जीव को मरण के पूर्व मिथ्यात्व में आना पड़ता है, तब उस जीव को मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व पाया जाता है ।

जिसने 7वें गुणस्थान में आहारक-2 का बंध किया, बाद में मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया । ऐसे जीव के मिथ्यात्व गुणस्थान में आहारक-2 का सत्त्व होता है ।

परन्तु ये दोनों प्रकृतियाँ एक साथ एक जीव में मिथ्यात्व गुणस्थान में नहीं पायी जाती । नाना जीवों की अपेक्षा इनका सत्त्व मिथ्यादृष्टि के संभव है । अत: प्रथम गुणस्थान में ये 3 प्रकृतियाँ नाना जीवों की अपेक्षा सत्त्व-योग्य हैं, परन्तु एक जीव की अपेक्षा सत्त्व-योग्य नहीं हैं ।

तीर्थंकर और आहारक-2 की सत्ता संबंधी नियम

सासादन गुणस्थान में प्रथमोपशम सम्यक्त्व से च्युत जीव ही आता है ।

प्रथमोपशम सम्यक्त्वी के आहारक-2 का सत्त्व संभव नहीं है ।

तथा तीर्थंकर प्रकृति वाले उपशम सम्यक्त्वी गिरते नहीं हैं ।

इसलिये ये प्रकृतियाँ सासादन में सत्त्व-योग्य ही नहीं हैं ।

तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला जीव गिरकर मिश्र में कभी नहीं जाता है । अत: मिश्र गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं है।

चत्तारिवि खेत्ताइं, आउगबंधेण होइ सम्मत्तं ।
अणुवदमहव्वदाइं, ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥334॥

- अर्थ— चारों ही गतियों में किसी भी आयु के बंध होने पर सम्यक्त्व होता है,
- परंतु देवायु के बंध के सिवाय अन्य तीन आयु के बन्ध वाला अणुव्रत तथा महाव्रत नहीं धारण कर सकता है ॥334॥

आयु सम्बन्धी नियम

किसी भी आयु का बंध हो जाने पर भी सम्यक्त्व हो सकता है ।

देवायु को छोड़कर अन्य आयु का बंध होने पर अणुव्रत और महाव्रत नहीं हो सकते हैं ।

आयु का बंध नहीं किया हो, तो अणुव्रत, महाव्रत होने में कोई बाधा नहीं है ।

www.JainKosh.org

आयु के संभव सत्त्व

	चौथे गुणस्थान तक	पाँचवा गुणस्थान	छठे से शेष
भुज्यमान	चारों आयु	मनुष्यायु, तिर्यंचायु	मनुष्यायु
बध्यमान	चारों आयु	देवायु	देवायु

अत: नरक आयु की सत्त्व-व्युच्छित्ति चतुर्थ गुणस्थान में, तिर्यंचायु की सत्त्व-व्युच्छित्ति पांचवें गुणस्थान में होती है ।

नोट— जिसके देवायु के अलावा अन्य आयु का बंध हुआ हो, उसके व्रत परिणाम के कारणभूत विशुद्ध परिणाम नहीं पाये जाते ।

भुज्यमान, बध्यमान आयु

भुज्यमान

जिस आयु को वर्तमान में भोगा जा रहा है, वह भुज्यमान आयु कहलाती है।

बध्यमान

परभव के लिए जिसका बंध किया है, वह बध्यमान आयु कहलाती है ।

www.JainKosh.org

णिरयतिरिक्खसुराउग-सत्ते ण हि देससयलवदिखवगा ।
अयदचउक्कं तु अणं, अणियट्टीकरणचरिमम्मि ॥335॥
जुगवं संजोगित्ता, पुणोवि अणियट्टीकरणबहुभागं ।
बोलिय कमसो मिच्छं, मिस्सं सम्मं खवेदि कमे ॥336॥जुम्मं ।

- अर्थ— नरक, तिर्यंच तथा देवायु के सत्त्व होने पर क्रम से देशव्रत, सर्वव्रत (महाव्रत) और क्षपक श्रेणी नहीं होती । और
- असंयतादि चार गुणस्थान वाले अनंतानुबंधी आदि सात प्रकृतियों का क्रम से क्षय कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते हैं । उन सातों में से पहले अनंतानुबंधी चार का अनिवृत्तिकरणरूप परिणामों के अंतर्मुहूर्त काल के अंतसमय में एक ही साथ विसंयोजन अर्थात् अनंतानुबंधी की चौकड़ी को अप्रत्याख्यानादि बारह कषायरूप परिणमन करा देता है । तथा
- (दूसरे) अनिवृत्तिकरणकाल के बहुभाग को छोड़ के शेष संख्यातवें एक भाग में पहले समय से लेकर क्रम से मिथ्यात्व, मिश्र तथा सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय करते हैं । इस प्रकार सात-प्रकृतियों के क्षय का क्रम है ॥335॥336॥

www.JainKosh.org

नरकायु का सत्त्व होने पर पंचम आदि गुणस्थान नहीं होते ।

तिर्यंचायु का सत्त्व होने पर छठा आदि गुणस्थान नहीं होते ।

देवायु का सत्त्व होने पर क्षपक श्रेणी नहीं होती ।

अनन्तानुबंधी-4 को एक साथ विसंयोजन करके नष्ट किया जाता है । विसंयोजन चतुर्थ से सातवें तक किसी भी गुणस्थान में होता है ।

दर्शन मोहनीय की 3 प्रकृतियों का क्रमशः नाश किया जाता है । सर्वप्रथम मिथ्यात्व का, फिर मिश्र का, अन्त में सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय होता है । यह क्षय असंयत सम्यक्त्व से अप्रमत्तसंयत तक इन 4 गुणस्थानों में होता है ।

www.JainKosh.org

गुणस्थानों में सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ

क्षायिक सम्यग्दृष्टि के चतुर्थ गुणस्थान से सप्तम तक 7-7 प्रकृतियाँ कम करनी चाहिए । क्योंकि अनन्तानुबंधी-4, दर्शन मोहनीय-3 का नाश हुआ है ।

गुणस्थान	संख्या प्रकृति	कारण
1	148	
2	145	आहारक-2, तीर्थंकर संभव नहीं ।
3	147	तीर्थंकर प्रकृति संभव नहीं ।
4	148	सर्व प्रकृतियाँ संभव ।
5	147	नरकायु संभव नहीं ।
6	146	नरकायु, तिर्यंचायु संभव नहीं ।
7	146	नरकायु, तिर्यंचायु संभव नहीं ।

www.JainKosh.org

सोलट्ठेक्किगिछक्कं, चदुसेक्कं बादरे अदो एक्कं ।
खीणे सोलमजोगे, बायत्तरि तेरुवंतंते ॥337॥

- अर्थ— बादर अर्थात् अनिवृत्तिकरण के 9 भागों में से पांच भागों में क्रम से 16, 8, 1, 1, 6 प्रकृतियाँ सत्ता से व्युच्छिन्न होती हैं । तथा चार भागों में एक-एक प्रकृति की सत्ता से व्युच्छित्ति है ।
- सूक्ष्म-सांपराय गुणस्थान में एक प्रकृति की व्युच्छित्ति है ।
- बारहवें क्षीणकषाय गुणस्थान में 16 प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है ।
- अयोगकेवली गुणस्थान के द्वि-चरम समय में 72 की तथा अंतिम समय में 13 प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है ॥337॥

www.JainKosh.org

क्षपक श्रेणी के अपूर्वकरण में सत्त्व

चारित्र मोहनीय की 21 प्रकृतियों के क्षय के लिए होने वाले जीव के विशुद्ध परिणामों को क्षपक श्रेणी कहते हैं ।

कुल प्रकृतियाँ	148
– दर्शन मोहनीय-3, अनन्तानुबंधी-4	– 7
– नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु	– 3
कुल	138

www.JainKosh.org

शेष गुणस्थानों में सत्त्व-व्युच्छित्ति

गुणस्थान	संख्या प्रकृति
अनिवृत्तिकरण	16
	8
	1
	1
	6
	1
	1
	1
	1, कुल 36
सूक्ष्म सांपराय	1
क्षीणमोह	16
सयोगकेवली	0
अयोगकेवली	72
	13, कुल 85

www.JainKosh.org

णिरयतिरिक्खदु वियलं, थीणतिगुज्जोवतावएइंदी ।
साहरणसुहुमथावर, सोलं मज्झिमकसायट्ठं ॥338॥

- अर्थ— अनिवृत्तिकरण के पहले भाग में नरक-2, तिर्यंच-2, विकलत्रय, स्त्यानगृद्धि-3, उद्योत, आतप, एकेन्द्रिय, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर — ये 16 व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ हैं ।
- दूसरे भाग में अप्रत्याख्यान-4 तथा प्रत्याख्यान-4 कषाय मिलकर आठ व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ हैं ॥338॥

www.JainKosh.org

इन 16 प्रकृतियों का नाश अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग में होता है ।

इन 8 कषायों का नाश अनिवृत्तिकरण के द्वितीय भाग में होता है ।

16 प्रकृतियाँ

- तिर्यक्-एकादश
- नरक-द्विक
- स्त्यानगृद्धि-3

तिर्यक् एकादश

- वे नामकर्म की प्रकृतियाँ जिनका उदय तिर्यंच को ही होता है, वे 11 प्रकृतियाँ तिर्यक् एकादश कहलाती हैं ।
- तिर्यंच-2
- 4 जाति
- आतप, उद्योत
- स्थावर, साधारण, सूक्ष्म

अप्रत्याख्यान-4

प्रत्याख्यान-4

osh.org

संढित्थिछक्कसाया, पुरिसो कोहो य माण मायं च ।
थूले सुहुमे लोहो, उदयं वा होदि खीणम्हि ॥339॥

- अर्थ— अनिवृत्तिकरण के तीसरे भाग में नपुंसक-वेद, चौथे भाग में स्त्री-वेद, पाँचवें में हास्यादि 6 नोकषाय; और छठे, सातवें, आठवें, नवमें भाग में क्रम से पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान, तथा माया है । इस प्रकार नवमें गुणस्थान में 36 प्रकृतियाँ व्युच्छिन्न होती हैं ।
- सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में संज्वलन लोभ प्रकृति की व्युच्छित्ति होती है । तथा
- क्षीणकषाय गुणस्थान में उदय की तरह ज्ञानावरण-5, दर्शनावरण-4, अंतराय-5 और निद्रा, प्रचला – इस प्रकार 16 प्रकृतियों की व्युच्छित्ति होती है ॥339॥

www.JainKosh.org

अनिवृत्तिकरण के 9 भागों में 36 कर्मों का सत्ता से नाश

अनिवृत्तिकरण के इस भाग में	कौन-से कर्म का क्षय होता है?
तीसरे भाग में	नपुंसक-वेद
चतुर्थ भाग में	स्त्री-वेद
पांचवें भाग में	6 नोकषाय
छठे भाग में	पुरुषवेद
सातवें भाग में	संज्वलन क्रोध
आठवें भाग में	संज्वलन मान
नवें भाग में	संज्वलन माया

सूक्ष्म सांपराय के अंत में

- संज्वलन लोभ का नाश होता है ।

क्षीणकषाय गुणस्थान के अंत में

- ज्ञानावरण-5, दर्शनावरण-4, 2 निद्रा, अंतराय-5 – कुल 16 प्रकृतियों का क्षय होता है । (नोट— ये वे ही प्रकृतियाँ हैं, जिनकी उदय-व्युच्छित्ति 12वें गुणस्थान में होती है ।)

सयोगकेवली गुणस्थान में कोई प्रकृति नष्ट नहीं होती ।

देहादीफस्संता, थिरसुहसरसुरविहायदुग दुभगं ।
णिमिणं जसणादेज्जं, पत्तेयापुण्ण अगुरुचऊ ॥340॥
अणुदयतदियं णीचमजोगिदुचरिमम्मि सत्तवोच्छिण्णा ।
उदयगबार णराणू, तेरस चरिमम्मि वोच्छिण्णा ॥341॥जुम्मं ।

- अर्थ— पाँच शरीर से लेकर आठ स्पर्श तक 50, स्थिर-शुभ-स्वर-देवगति-विहायोगति इनका जोड़ा, दुर्भग, निर्माण, अयशस्कीर्ति, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, अगुरुलघु-4, तीसरे वेदनीय कर्म की अनुदयरूप एक प्रकृति और नीचगोत्र — ये 72 प्रकृतियाँ अयोगकेवली के उपान्त्य समय में सत्त्व से व्युच्छिन्न होती हैं ।
- जिनका उदय अयोगकेवली गुणस्थान में है ऐसी उदयगत 12 प्रकृतियाँ और एक मनुष्य-गत्यानुपूर्वी – इस प्रकार 13 प्रकृतियाँ अयोगकेवली के अंत समय में सत्त्व से व्युच्छिन्न होती हैं ॥340-341॥

www.JainKosh.org

अयोगकेवली के द्विचरम समय में व्युच्छिन्न प्रकृतियाँ

शरीर नामकर्म से स्पर्श तक कर्म (50)	
शरीर	5
बंधन	5
संघात	5
संस्थान	6
अंगोपांग	3
संहनन	6
वर्ण	5
गंध	2
रस	5
स्पर्श	8

पुद्गल-विपाकी स्वतंत्र कर्म अगुरुलघु, उपघात, परघात, निर्माण	4
पुद्गलविपाकी शेष स्थिर-2, शुभ-2, प्रत्येक	5
देवगति-2	2
विहायोगति-2	2
उच्छ्वास, अपर्याप्त	2
दुर्भग-3	3
स्वर-2	2
साता, असाता में से एक	1
नीच गोत्र	1
कुल (50+22) =	72

अयोगकेवली के द्विचरम समय में सत्त्व-व्युच्छित्ति

पुद्गलविपाकी 62 में से 59 प्रकृतियाँ यहाँ सत्त्व व्युच्छिन्न होती हैं । 3 प्रकृतियाँ (साधारण, आतप, उद्योत) नवें गुणस्थान में ही नष्ट हुई हैं ।

शेष जो प्रकृतियाँ उदय-योग्य नहीं हैं, उनका परमुख से नाश होता है । अतः ऐसी शेष 13 प्रकृतियाँ यहाँ व्युच्छिन्न होती हैं ।

अयोगी होने से विहायोगति, उच्छ्वास, स्वर-2 — ये प्रकृतियाँ उदय-योग्य नहीं हैं । अतः इनका नाश पहले होता है ।

देवगति-2, दुर्भग-3, नीचगोत्र, अपर्याप्त — ये प्रकृतियाँ भी यहाँ उदय-योग्य नहीं हैं, अतः इनका नाश पहले होता है ।

जिस वेदनीय की उदय-व्युच्छित्ति सयोगकेवली में हो चुकी है, उस प्रकृति का भी यहाँ उदय नहीं होने से वह पहले नष्ट होती है ।

अयोगकेवली के चरम समय में सत्त्व-व्युच्छित्ति (13)

मनुष्यगति-2	2
पंचेन्द्रिय जाति	1
त्रस, बादर, पर्याप्त	3
सुभग, आदेय, यश	3
तीर्थंकर	1
वेदनीय	1
उच्च गोत्र	1
मनुष्यायु	1
कुल	13

यहाँ 12 वे ही प्रकृतियाँ हैं, जिनकी उदय-व्युच्छित्ति अंतिम समय में होती है । उसमें मनुष्यानुपूर्वी जोड़ने से 13 प्रकृतियाँ होती हैं ।

Kosh.org

अयोगकेवली के द्विचरम समय में सत्त्व-व्युच्छित्ति
1
0
0
0
0
0
0
0
0
0
0
0
0
0
0
×
वर्तमान समय
अगले निषेक का संक्रमण
नीच गोत्र
उच्च गोत्र
2
×
वर्तमान समय
नीच गोत्र
उच्च गोत्र

इस प्रकार प्रत्येक समय में करते हुए द्विचरम समय में यह स्थिति होती है

द्विचरम समय

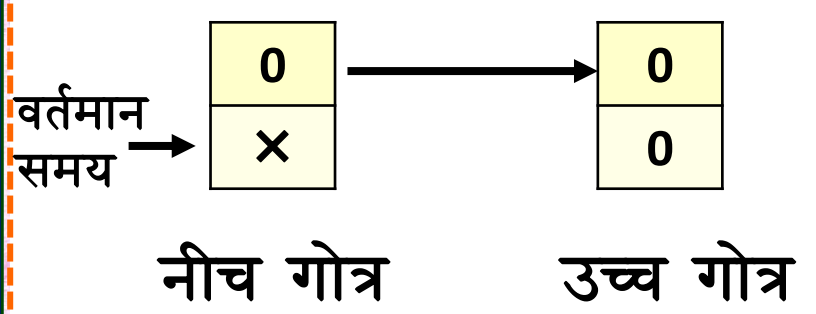

यहाँ चरम समय में नीचगोत्र का सत्त्व ही नहीं है, अतः उसकी सत्त्व-व्युच्छित्ति द्विचरम समय में हुई । उच्च गोत्र का अंतिम निषेक चरम समय तक है, अतः उसकी व्युच्छित्ति चरम समय में हुई ।

चरम समय

ऐसे ही सारे द्विचरम एवं चरम समय के सत्त्व-व्युच्छित्ति प्रकृतियों के बारे में जानना ।

णभतिगिणभइगि दोद्धो, दस दससोलट्ठगादिहीणेसु ।
सत्ता हवंति एवं, असहायपरक्कमुद्दिट्ठं ॥342॥

- अर्थ— मिथ्यादृष्टि आदि अपूर्वकरण गुणस्थान तक क्रम से 0, 3, 1, 0, 1, 2, 2, 10 इतनी प्रकृतियों का असत्त्व जानना । और
- अनिवृत्तिकरण के पहले भाग में 10, दूसरे में 16, तीसरे आदि भाग में 8 आदि प्रकृतियाँ असत्त्व जाननी । और
- इन असत्त्व प्रकृतियों को सब सत्त्व प्रकृतियों में घटाने से अवशेष प्रकृतियाँ अपने-अपने गुणस्थानों में सत्त्व प्रकृतियाँ हैं ।
- ऐसा सहायतारहित पराक्रम के धारण करने वाले श्रीमहावीर-स्वामी ने कहा है ॥342॥

www.JainKosh.org

गुणस्थानों में सत्त्व-असत्त्व

	सत्त्व-व्युच्छित्ति	सत्त्व	असत्त्व
1	0	148	0
2	0	145	आहारक-2, तीर्थंकर = 3
3	0	147	तीर्थंकर
4	नरकायु	148	0
5	तिर्यंचायु	147	1
6	0	146	2
7	7, 1 देवायु = 8	146	2
8	0	138	10

www.JainKosh.org

गुणस्थान	सत्त्व-व्युच्छित्ति	सत्त्व	असत्त्व
9वे का 1 भाग	16	138	10
2 भाग	8	122	26
3 भाग	1	114	34
4 भाग	1	113	35
5 भाग	6	112	36
6 भाग	1	106	42
7 भाग	1	105	43
8 भाग	1	104	44
9 भाग	1	103	45
10	1	102	46
12	16	101	47
13	0	85	63
14 का द्विचरम-समय	72	85	63
चरम-समय	13	13	135

www.JainKosh.org

खवणं वा उवसमणे, णवरि य संजलणपुरिसमज्झम्मि ।
मज्झिमदोद्दो कोहादीया कमसोवसंता हु ॥343॥

- अर्थ— उपशम के विधान में भी क्षपणा विधान की तरह क्रम जानना । परंतु विशेष बात यह है कि संज्वलन कषाय और पुरुषवेद के मध्य में बीच के जो अप्रत्याख्यान तथा प्रत्याख्यान कषाय संबंधी दो-दो क्रोधादि हैं सो उनको संज्वलन क्रोधादि के साथ क्रम से उपशमन करता है ॥343॥

उपशम श्रेणी

21 चारित्र मोहनीय कर्म के उपशमाने के लिए होने वाले जीव के विशुद्ध परिणामों को उपशम श्रेणी कहते हैं ।

उपशम श्रेणी में कर्म क्षय नहीं होते । मात्र अंतर्मुहूर्त काल के निषेक स्वस्थान से हटाये जाते हैं ।

इन 21 कर्मों के निषेकों के उपशम का क्रम इस प्रकार है—

क्रम	प्रकृति
1	नपुंसक-वेद
2	स्त्री-वेद
3	6 नोकषाय, पुरुषवेद
4	पुरुषवेद का नवक बंध, 3 क्रोध
5	क्रोध का नवक बंध, 3 मान
6	मान का नवक बंध, 3 माया
7	माया का नवक बंध, 3 लोभ
8	सूक्ष्म लोभ

www.JainKosh.org

विशेष

इन सभी का अंतर तो एक साथ किया जाता है, पर उपशमन क्रमशः होता है।

'अंतर करना' याने आगामी काल के अंतर्मुहूर्त प्रमाण निषेकों को पूर्णरूप से खाली कर देना ।

उपशम श्रेणी के चारों गुणस्थानों में सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ 146 हैं क्योंकि तिर्यंचायु, नरकायु का सत्त्व संभव नहीं है ।

8, 9, 10, 11वे गुणस्थान में सत्त्व 146, असत्त्व 2

www.JainKosh.org

णिरयादिसु पयडिट्ठिदि-अणुभागपदेसभेदभिण्णस्स ।
सत्तस्स य सामित्तं, णेदव्वमिदो जहाजोग्गं ॥344॥

- अर्थ— इसके बाद नरकगति आदि मार्गणाओं में भी प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश – इन चार भेदों को लिये हुए जो प्रकृतियों का सत्त्व है वह यथायोग्य समझना ॥344॥

तिरिए ण तित्थसत्तं, णिरयादिसु तिय चउक्क चउ तिण्णि ।
आऊणि होंति सत्ता, सेसं ओघादु जाणेज्जो ॥345॥

- अर्थ— तिर्यंच गति में तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं होती ।
- नरक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देवगति में क्रम से
  - भुज्यमान नरकायु, बध्यमान तिर्यंच और मनुष्यायु – इन 3 आयु की,
  - भुज्यमान तिर्यंचायु, बध्यमान नरक-तिर्यंच-मनुष्य-देवायु – इन 4 की,
  - भुज्यमान मनुष्यायु, बध्यमान नरक-तिर्यंच-मनुष्य-देवायु – इन 4 की,
  - भुज्यमान देवायु, बध्यमान तिर्यंच और मनुष्यायु – इन 3 आयुकर्मों की
- सत्ता रहने योग्य है ।
- शेष प्रकृतियों की सत्ता गुणस्थान की तरह समझना ॥345॥

www.JainKosh.org

मार्गणाओं में सत्त्व संबंधी नियम

तिर्यंचगति में तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है । क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला जीव कभी तिर्यंच गति में नहीं पाया जाता है ।

www.JainKosh.org

4 गति में संभव आयु के सत्त्व

गति	भुज्यमान	बध्यमान	संभव आयु सत्त्व संख्या
नरक गति	नरकायु	मनुष्यायु, तिर्यंचायु	3
तिर्यंच गति	तिर्यंचायु	चारों आयु	4
मनुष्य गति	मनुष्यायु	चारों आयु	4
देवगति	देवायु	मनुष्यायु, तिर्यंचायु	3

www.JainKosh.org

4 गति में संभव सत्त्व प्रकृतियाँ

गति	संभव सत्त्व प्रकृतियाँ	घटी हुई प्रकृति
नरक गति	147	देवायु
तिर्यंच गति	147	तीर्थंकर
मनुष्य गति	148	–
देवगति	147	नरकायु

www.JainKosh.org

ओघं वा णेरइये, ण सुराऊ तित्थमत्थि तदियोत्ति ।
छट्ठित्ति मणुस्साऊ, तिरिए ओघं ण तित्थयरं ॥346॥

- अर्थ— नरक गति में गुणस्थानवत् सत्ता जानना । परंतु देवायु का सत्त्व नहीं है; इस कारण 147 प्रकृतियाँ सत्त्व-योग्य हैं ।
- तीसरे नरक तक ही तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व है तथा
- मनुष्यायु का सत्त्व छठी नरकपृथ्वी तक ही है ।
- तिर्यंचगति में भी गुणस्थानवत् जानना । लेकिन तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है, इस कारण सत्त्व-योग्य 147 प्रकृतियाँ हैं ॥346॥

नरक गति में सत्त्व

1 से 3 नरक (147)

गुण.	सत्त्व	असत्त्व
1	147	0
2	144	आहारक-2, तीर्थंकर
3	146	तीर्थंकर
4	147	0

4 से 6 नरक (147 – तीर्थंकर = 146)

गुण.	सत्त्व	असत्त्व
1	146	0
2	144	2
3	146	0
4	146	0

7वां नरक 146 – मनुष्यायु = 145

गुण.	सत्त्व	असत्त्व
1	145	0
2	143	2
3	145	0
4	145	0

तिर्यंच गति (147)

गुण.	सत्त्व	असत्त्व
1	147	0
2	145	2
3	147	0
4	147	0
5	145	मनुष्यायु, नरकायु

www.JainKosh.org

एवं पंचतिरिक्खे, पुण्णिदरे णत्थि णिरयदेवाऊ ।
ओघं मणुसतियेसुवि, अपुण्णगे पुण अपुण्णेव ॥347॥

- अर्थ— इसी प्रकार पांच जाति के तिर्यंचों में भी सामान्य रीति से सत्त्व जानना । परंतु लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच में नरकायु और देवायु का सत्त्व नहीं है ।
- मनुष्य के तीन भेदों में भी गुणस्थानवत् सत्त्व समझना । परंतु लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य में लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच की तरह 145 प्रकृतियाँ सत्त्व-योग्य हैं ॥347॥

www.jainkosha.org

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त, योनिनी तिर्यंच

- इनके सामान्य तिर्यंच की तरह ही सत्त्व है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त

- देवायु, नरकायु का सत्त्व नहीं है, अतः 147 – 2 = 145 प्रकृतियों का सत्त्व मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में है ।

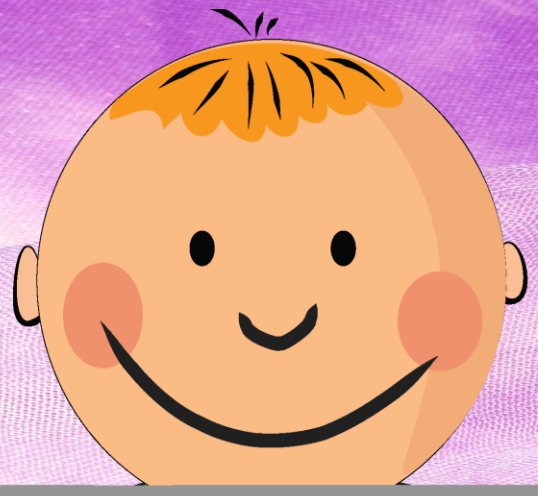

मनुष्य गति

मनुष्य, मनुष्य पर्याप्त के ओघवत् सर्व कथन है ।

क्योंकि मनुष्यों में ही सारी प्रकृतियाँ सत्त्व-योग्य हैं और सारी सत्त्व-व्युच्छित्ति पायी जाती है ।

परन्तु तिर्यंचायु की सत्त्व-व्युच्छित्ति चतुर्थ गुणस्थान में ही करना चाहिए

क्योंकि तिर्यंचायु का बंध होने पर देशव्रत आदि नहीं होते ।

www.JainKosh.org

मनुष्यिनी (148)

1. मनुष्यिनी को तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व संभव है । परन्तु उसी भव में क्षपक श्रेणी पर आरोहण करके मुक्त नहीं हो सकती । क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का उदय मनुष्य पुरुषवेदी के ही होता है, स्त्रीवेदी के नहीं । अतः क्षपक श्रेणी की अपेक्षा तीर्थंकर प्रकृति की व्युच्छित्ति मनुष्यिनी के अप्रमत्त गुणस्थान में की जाएगी ।

2. इसके पुरुषवेद का क्षय हास्यादि 6 नोकषाय के साथ होता है, अतः अनिवृत्तिकरण के 9 भाग करने के स्थान पर 8 भाग होते हैं ।

शेष कथन मनुष्य सामान्य के समान है ।

www.JainKosh.org

मनुष्यिनी (148)

गुण.	सत्त्व-व्युच्छित्ति	सत्त्व	असत्त्व
1	0	148	0
2	0	145	3
3	0	147	1
4	नरकायु, तिर्यंचायु	148	0
5	0	146	नरकायु, तिर्यंचायु
6	0	146	2 आयु
7	7, देवायु, तीर्थंकर	146	2
8	0	137	11
9 - 1	16	137	11
9 - 2	8	121	27
9 - 3	1	113	35
9 - 4	1	112	36
9 - 5	7	111	37
9 - 6	1	104	44
9 - 7	1	103	45
9 - 8	1	102	46
10	1	101	47
12	16	100	48
13	0	84	64
14 द्विचरम	72	84	64
14 चरम	12	12	136

www.J

मनुष्य लब्धि-अपर्याप्त के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ 145 हैं ।

(148 – देवायु, नरकायु, तीर्थंकर)

www.jainelibrary.org

ओघं देवे ण हि णिरयाऊ सारोत्ति होदि तिरियाऊ ।
भवणतियकप्पवासिय-इत्थीसु ण तित्थयरसत्तं ॥348॥

- अर्थ— देवगति में सामान्यवत् जानना । परंतु नरकायु नहीं है, इस कारण 147 सत्त्व प्रकृतियाँ हैं ।
- सहस्रार नामा बारहवें स्वर्ग तक ही तिर्यंच आयु की सत्ता है, आगे नहीं ।
- भवनत्रिक देवों में तथा कल्पवासिनी स्त्रियों में तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है ॥348॥

देवगति में सत्त्व-असत्त्व

(148 – नरकायु = 147)

प्रथम स्वर्ग से बारहवें स्वर्ग तक	147
13वें स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धि तक (147 – तिर्यंचायु)	146
भवनत्रिक, देवियों में (147 – तीर्थंकर)	146

गुण.	सत्त्व	असत्त्व
1	146	तीर्थंकर
2	144	आहारक-2, तीर्थंकर
3	146	तीर्थंकर
4	147	0

ओघं पंचक्खतसे, सेसिंदियकायगे अपुण्णं वा ।
तेउदुगे ण णराऊ, सव्वत्थुव्वेल्लणा वि हवे ॥349॥

- अर्थ— पंचेन्द्रिय और त्रसकाय में सामान्य गुणस्थान की तरह 148 सत्त्व प्रकृतियाँ हैं । और शेष एकेन्द्रिय आदि चतुरिन्द्रिय तक में तथा पृथिवी आदि स्थावरकाय में लब्ध्यपर्याप्तक की तरह 145 प्रकृतियों की सत्ता जानना ।
- परंतु तेजःकाय और वायुकाय में मनुष्यायु का सत्त्व नहीं है, इस कारण इन दोनों में 144 की ही सत्ता समझना । तथा सब जगह अर्थात् इन्द्रिय और काय मार्गणा में प्रकृतियों की उद्वेलना भी होती है ॥349॥

www.JainKosh.org

इन्द्रिय मार्गणा एकेन्द्रिय, विकलत्रय

सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ	148
– तीर्थंकर	– 1
– देवायु, नरकायु	– 2
कुल	145

पंचेन्द्रिय में ओघवत् ।

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
1	145	0
2	143	आहारक-2

www.Jain

काय मार्गणा

पृथ्वी, जल, वनस्पति में एकेन्द्रिय के समान ।

त्रसकायिक ओघ के समान ।

अग्नि, वायुकायिक में मनुष्यायु का भी सत्त्व नहीं है ।

145 – मनुष्यायु = 144 प्रकृतियाँ मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सत्त्व-योग्य हैं ।

www.JainKosh.org

हारदु सम्मं मिस्सं, सुरदुग णारयचउक्कमणुकमसो ।
उच्चागोदं मणुदुग-मुव्वेल्लिज्जंति जीवेहिं ॥350॥

- अर्थ— आहारक-2, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्रमोहनीय, देव-2, नारक-चतुष्क, उच्च गोत्र और मनुष्य-2 – इन 13 प्रकृतियों की क्रम से जीवों के द्वारा उद्वेलना की जाती है ॥350॥

उद्वेलना

जिन प्रकृतियों का बंध किया था,

उन्हें उद्वेलन भागहार के द्वारा

अपकर्षण करके

अन्य प्रकृतिरूप करके

नाश को प्राप्त कराना

उद्वेलन कहलाता है ।

उद्वेलना प्रकृतियाँ (13)

- आहारक-2
- सम्यक्त्व
- मिश्र
- देव-2
- नारक-4
- उच्च गोत्र
- मनुष्य-2

www.JainKosh.org

चदुगादिमिच्छे चउरो, इगिविगले छप्पि तिण्णि तेउदुगे ।
सिय अत्थि णत्थि सत्तं, सपदे उप्पण्णठाणेवि ॥351॥

- अर्थ— चारों गति वाले मिथ्यादृष्टि जीवों के चार प्रकृतियाँ, एकेन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय आदि विकलत्रय में 6 प्रकृतियाँ, तेजःकाय-वायुकाय इन दोनों के तीन प्रकृतियाँ उद्वेलन के योग्य हैं ।
- अपने स्थान में और उत्पन्न स्थान में ये किसी तरह सत्त्वरूप हैं, और किसी तरह सत्त्वरूप नहीं भी हैं । अर्थात् उद्वेलना न हुई हो तब तो सत्त्व, यदि उद्वेलना हुई हो तो उन प्रकृतियों का असत्त्व जानना ॥351॥

उद्वेलना प्रकृतियों के स्वामी

प्रकृति	स्वामी
आहारक-2	चतुर्गति मिथ्यादृष्टि
सम्यक्त्व	चतुर्गति मिथ्यादृष्टि
मिश्र	चतुर्गति मिथ्यादृष्टि
देव-2	एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय
नारक-4	एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय
उच्च गोत्र	अग्निकायिक, वायुकायिक
मनुष्य-2	अग्निकायिक, वायुकायिक

www.JainKosh.org

उद्वेलना विशेष

जिन प्रकृतियों की उद्वेलना हो जाती है, उनका सत्त्व नहीं पाया जाता ।

आगे जिस भव में जाता है, वहाँ भी जब तक वह प्रकृति पुनः बाँध नहीं लेता, तब तक उसका सत्त्व नहीं पाया जाता ।

जैसे वायुकायिक जीव ने उच्च गोत्र की उद्वेलना करके उसका सत्त्व समाप्त कर दिया, तो उस वायुकायिक के उसकी सत्ता नहीं है ।

वही जीव मरकर पंचेन्द्रिय बना, तो उस पंचेन्द्रिय के भी जब तक उच्च गोत्र का बंध नहीं होता, तब तक उस पंचेंद्रिय जीव के उच्च गोत्र का सत्त्व नहीं होता ।

उद्वेलना होने पर संभव सत्त्व स्थान

तीर्थंकर, देवायु, नरकायु की सत्ता बिना मिथ्यादृष्टि जीव, सत्त्व = 145

इन प्रकृतियों की उद्वेलना होने पर	सत्त्व प्रकृतियाँ
1. आहारक-2	143
2. सम्यक्त्व	142
3. मिश्र	141
4. देव-2	139
5. नारक-4	135
मनुष्यायु के सत्त्व बिना	134
6. उच्च गोत्र	133
7. मनुष्य-2	131

स्वस्थान में सत्त्व

विवक्षित पर्याय में
उद्वेलना से या बिना उद्वेलना के
जो सत्त्व होता है,
वह स्वस्थान सत्त्व है ।

जैसे पंचेन्द्रिय बने रहते हुए आहारक-2 की उद्वेलना करके 143 का सत्त्व हुआ, वह स्वस्थान में सत्त्व है ।

उत्पन्न स्थान में सत्त्व

पूर्व पर्याय में जो सत्त्व हुआ
उस सहित अगली पर्याय में उत्पन्न हो,
वहाँ नवीन पर्याय में विवक्षित सत्त्व को
उत्पन्न स्थान में सत्त्व कहते हैं ।

143 के सत्त्व के साथ
एकेन्द्रिय में उत्पन्न हुआ,
वह उत्पन्न स्थान में सत्त्व है ।

www.JainKosh.org

पुण्णेक्कारसजोगे, साहारय मिस्सगे वि सगुणोघं ।
वेग्गुव्वियमिस्सेवि य, णवरि ण माणुसतिरिक्खाऊ ॥352॥

- अर्थ— मनोयोगादि 11 पूर्ण योगों में और आहारकमिश्र योग में अपने-अपने गुणस्थानों की तरह सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ जानना ।
- इसी प्रकार वैक्रियिक मिश्र योग में भी गुणस्थानवत् ही सत्त्व जानना । परन्तु विशेष बात यह है कि यहाँ पर मनुष्यायु और तिर्यंचायु की सत्ता नहीं है, इस कारण 146 सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ हैं ॥352॥

योग मार्गणा

4 मनयोग,

4 वचनयोग,

औदारिक काययोग,

वैक्रियिक काययोग,

आहारक काययोग,

आहारक मिश्र में गुणस्थानवत् है ।

www.JainKosh.org

वैक्रियिक मिश्र (146)

वैक्रियिक मिश्र में सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ

= 148 – तिर्यंचायु – मनुष्यायु

= 146 हैं

क्योंकि वैक्रियिक मिश्र में आयु का बंध नहीं होता है ।

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
1	146	0
2	142	आहारक-2, तीर्थंकर, नरकायु
4	146	0

ओरालमिस्सजोगे, ओघं सुरणिरयआउगं णत्थि ।
तम्मिस्सवामगे ण हि, तित्थं कम्मेवि सगुणोघं ॥353॥

- अर्थ— औदारिकमिश्रयोग में सामान्य गुणस्थानवत् सत्त्व जानना । परंतु देवायु तथा नरकायु ये दो नहीं हैं, इस कारण 146 का सत्त्व है ।
- औदारिकमिश्र-मिथ्यादृष्टि के तीर्थंकर प्रकृति नहीं, इसलिये पहले गुणस्थान में 145 का सत्त्व है ।
- इसी प्रकार कार्मणकाययोग में भी गुणस्थानवत् 148 प्रकृतियों का सत्त्व समझना ॥353॥

औदारिक मिश्र (146)

औदारिक मिश्रयोग में सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ

148 – देवायु – नरकायु

= 146 हैं

क्योंकि मिश्रकाययोग वाला जीव देवायु, नरकायु नहीं बांधता है ।

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
1	145	तीर्थंकर
2	143	तीर्थंकर, आहारक-2,
4	146	0
13	85	61

कार्मण काययोग (148)

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
1	148	0
2	144	आहारक-2, तीर्थंकर, नरकायु
4	148	0
13	85	63

www.JainKosh.org

वेदादाहारोत्ति य, सगुणोघं णवरि संढथीखवगे ।
किण्हदुगसुहतिलेस्सिय-वामेवि ण तित्थयरसत्तं ॥354॥

- अर्थ— वेद मार्गणा से लेकर आहार मार्गणा पर्यंत अपने-अपने गुणस्थानवत् सामान्य सत्त्व जानना ।
- परंतु विशेषता यह है कि नपुंसकवेद और स्त्री-वेद क्षपकश्रेणी वाले के तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नहीं है ।
- इसी प्रकार कृष्णलेश्या तथा नीललेश्या वाले और पीतादि तीन शुभलेश्या वाले मिथ्यादृष्टि के तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है ॥354॥

वेद मार्गणा

पुरुष-वेद में सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ = 148

सर्व रचना गुणस्थानवत्, नवें गुणस्थान के सवेद भाग तक

स्त्री-वेद, नपुंसक-वेद में सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ = 148

इसकी रचना मनुष्यिनीवत्, नवें गुणस्थान के सवेद भाग तक

www.JainKosh.org

कषाय मार्गणा

क्रोधादि चारों कषायों की सत्त्व-रचना गुणस्थानवत् जानना ।

कुमति, कुश्रुत, विभंगज्ञानी में सर्वकथन गुणस्थानवत् । सत्त्व प्रकृतियाँ = 148

मति, श्रुत, अवधिज्ञान में सर्वकथन गुणस्थानवत् । सत्त्व प्रकृतियाँ = 148

मन:पर्यय ज्ञान में सर्वकथन गुणस्थानवत् । सत्त्व प्रकृतियाँ = 146

केवलज्ञान में सत्त्व प्रकृतियाँ 85 हैं ।

ज्ञान मार्गणा

केवलज्ञान (85)

गुणस्थान	व्युच्छित्ति	सत्त्व	असत्त्व
13	0	85	0
14 – द्विचरम	72	85	0
14 – चरम	13	13	72

संयम मार्गणा

सामायिक, छेदोपस्थापना में सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ = 148 – 2 आयु = 146, सर्वकथन गुणस्थानवत्

परिहार-विशुद्धि में सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ = 146, गुणस्थानवत् 6-7वां ।

सूक्ष्म-सांपराय में सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ = 102 10वे गुणस्थानवत् ।

www.JainKosh.org

यथाख्यात संयम (146)

यथाख्यात संयम में सत्त्व-योग्य प्रकृतियाँ उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी अपेक्षा हैं ।

उपशांत कषाय में 148 – नरकायु, तिर्यंचायु = 146 का अथवा

148 – नरकायु, तिर्यंचायु – 4 अनन्तानुबंधी = 142 का अथवा

148 – 2 आयु – 3 दर्शनमोह – 4 अनन्तानुबंधी = 139 का अथवा

139 – देवायु = 138 का सत्त्व है ।

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
11	146, 138	0, 8
12	101	45
13	85	61
14-द्विचरम	85	61
चरम	13	133

Kosh.org

यथाख्यात संयम – उपशांतकषाय

सत्त्व प्रकृति	स्वामी
148 – 2 आयु = 146	द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि बद्धायुष्क
146 – देवायु = 145	द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि अबद्धायुष्क
146 – 4 अनन्तानुबंधी = 142	द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि बद्धायुष्क
142 – देवायु = 141	द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि अबद्धायुष्क
142 – 3 दर्शन मोहनीय = 139	क्षायिक सम्यग्दृष्टि बद्धायुष्क
139 – देवायु = 138	क्षायिक सम्यग्दृष्टि अबद्धायुष्क

दर्शन मार्गणा

चक्षु, अचक्षुदर्शन में गुणस्थानवत् रचना ।

अवधिदर्शन में अवधिज्ञानवत् ।

केवलदर्शन में केवलज्ञानवत् ।

लेश्या मार्गणा
कृष्ण, नील लेश्या
(148)

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
1	147	तीर्थंकर
2	145	आहारक-2, तीर्थंकर
3	147	तीर्थंकर
4	148	0

कृष्ण, नील लेश्या के साथ तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व मिथ्यात्व गुणस्थान में नहीं है, क्योंकि जो नरक जाने को सम्मुख है, ऐसा क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि ही मिथ्यात्व में आता है, तब उसके मिथ्यात्व गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व दिखता है ।

ऐसा जीव अधिकतम तीसरे नरक तक ही जाता है । उस समय उसकी लेश्या कपोत ही होती है; कृष्ण, नील नहीं ।

www.Jain

इसी प्रकार 3 शुभ लेश्या के साथ भी मिथ्यात्व गुण में तीर्थंकर का सत्त्व नहीं होता है । अतः मिथ्यात्व गुणस्थान में सत्त्व 147 है । शेष कथन गुणस्थानवत् है ।

कपोत लेश्या में सर्वकथन गुणस्थानवत् है ।

अभव्वसिद्धे णत्थि हु, सत्तं तित्थयरसम्ममिस्साणं ।
आहारचउक्कस्सवि, असण्णिजीवे ण तित्थयरं ॥355॥

- अर्थ— अभव्य मार्गणा में तीर्थंकर प्रकृति, सम्यक्त्व प्रकृति, मिश्रमोहनीय तथा आहारक चतुष्क का (अर्थात् आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, आहारक बंधन, आहारक संघात) का — इस प्रकार सात प्रकृतियों का सत्त्व नहीं है । और
- असंज्ञी जीव के तीर्थंकर प्रकृति का सत्त्व नहीं है ॥355॥

भव्य मार्गणा में भव्य जीवों का कथन ओघ के समान है ।

अभव्य

कुल सत्त्व	148
– सम्यक्त्व, मिश्र	– 2
– आहारक-4	– 4
– तीर्थंकर	– 1
अभव्य के कुल सत्त्व प्रकृतियाँ	141

www.JainKosh.org

सम्यक्त्व मार्गणा

उपशम सम्यक्त्व (148)

वेदक सम्यक्त्व में
सत्त्व 148,
रचना गुणस्थानवत् ।

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
4	148	0
5	147	नरकायु
6	146	नरकायु, तिर्यंचायु
7	146	2
8	146	2
9	146	2
10	146	2
11	146	2

क्षायिक सम्यक्त्व (141)

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
4	141	0
5	139	नरकायु, तिर्यंचायु
6	139	2
7	139	2
8	138	3 आयु
9	138	3
10	102	39
12	101	40
13	85	56
14	85	56
चरम	13	128

www.JainK

संज्ञी मार्गणा

संज्ञी मार्गणा में सत्त्व प्रकृतियाँ 148 हैं ।
सर्वकथन गुणस्थानवत् ।

असंज्ञी जीव में सत्त्व प्रकृतियाँ 148 — तीर्थंकर = 147 हैं ।
रचना गुणस्थानवत् ।

www.JainKosh.org

कम्मेवाणाहारे, पयडीणं सत्तमेवमादेसे ।
कहियमिणं बलमाहव-चंदच्चियणेमिचंदेण ॥356॥

- अर्थ— अनाहार मार्गणा में कार्मण काययोगवत् सत्त्वप्रकृतियों की रचना जानना ।
- इस प्रकार मार्गणास्थानों में यह प्रकृतियों का बलदेव और वासुदेव से पूजित श्रीनेमिचन्द्र तीर्थंकरदेव ने अथवा बलदेव भ्राता तथा माधवचन्द्र त्रैविद्यदेव से पूजित नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने कहा है ॥356॥

आहारक मार्गणा में गुणस्थानवत्

अनाहारक में कार्मण काययोग की भांति

अनाहारक मार्गणा

गुणस्थान	सत्त्व	असत्त्व
1	148	0
2	144	आहारक-2, तीर्थंकर, नरकायु
4	148	0
13	85	63
14 - द्विचरम	85	63
14 - चरम	13	135

www

सो मे तिहुवणमहियो, सिद्धो बुद्धो णिरंजणो णिच्चो ।
दिसदु वरणाणलाहं, बुहजणपरिपत्थणं परमसुद्धं ॥357॥

- अर्थ— आचार्य महाराज प्रार्थना करते हैं कि जो तीन लोक से पूजित, सिद्ध, बुद्ध, कर्मरूपी अंजन से रहित और नित्य अर्थात् जन्म-मरण से रहित ऐसे श्रीनेमिचन्द्र तीर्थंकर;
- मुझको, ज्ञानीजनों से प्रार्थना करने योग्य, परमशुद्ध ऐसे उत्कृष्ट ज्ञान का लाभ दो । अर्थात् मुझे उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त हो ऐसी आचार्य प्रार्थना करते हैं ॥357॥

जो तीन लोक से पूजित, सिद्ध, बुद्ध,
कर्मरूपी अंजन से रहित और नित्य
अर्थात् जन्म-मरण से रहित ऐसे
श्रीनेमिचन्द्र तीर्थंकर;

मुझको, ज्ञानीजनों से प्रार्थना करने
योग्य, परमशुद्ध ऐसे उत्कृष्ट ज्ञान
का लाभ दो ।

- Reference : गोम्मटसार कर्मकांड, सम्यग्ज्ञान चंद्रिका,

Presentation developed by

Smt. Sarika Vikas Chhabra

- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 94066-82889

- इसी विषय के विडियो लेक्चर हमारे चैनल पर उपलब्ध हैं । आप अवश्य लाभ लें । www.Jainkosh.org/wiki/Videos पेज पर जाएँ एवं प्लेलिस्ट चुनें ।